ResearchNext International Multidisciplinary Journal

Vol- 1, Issue- 2, October-December 2025 ISSN (O)- 3107-9725

Email id: editor@researchnextjournal.com Website- www.researchnextjournal.com

जलवायु परिवर्तन और भूजल स्तर में गिरावटः भारत के भूगोल पर दीर्घकालिक प्रभाव

डॉ0 विकाश कुमार

पूर्व शोध छात्र, भूगोल विभाग, साबरमती विश्वविद्यालय, अहमदाबाद, गुजरात

सारांश–

जलवायु परिवर्तन और भूजल स्तर में गिरावट भारत के भूगोल एवं सामाजिक–आर्थिक संरचना पर दूरगामी प्रभाव डाल रहे हैं। बढ़ते तापमान, अनियमित वर्षा और सूखे की आवृत्ति में वृद्धि के कारण प्राकृतिक जलचक्र बाधित हुआ है, जिससे भूमिगत जल का पुनर्भरण घटता जा रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में ग्लेशियरों का पिघलना और मैदानी क्षेत्रों में अत्यधिक जल–निकासी भूजल संकट को और गंभीर बना रहे हैं। कृषि, उद्योग और शहरी विकास में अनियंत्रित जल उपयोग ने जल स्तर गिरावट की गति को और तेज किया है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिक स्थिरता पर पड़ा है। कई क्षेत्रों में सिंचाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध न होने से फसल उत्पादन घटा है और सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ बढ़ी हैं। इसके अतिरिक्त भूजल के अत्यधिक दोहन से भू–आकृतिक संरचनाओं में अस्थिरता और भूमि धंसाव जैसी समस्याएँ उभर रही हैं। जलवायु परिवर्तन के इन प्रभावों से निपटने के लिए वर्षा जल संचयन, जल–संरक्षण तकनीकों, भूमिगत जल पुनर्भरण और प्रभावी नीति–निर्माण की आवश्यकता है। आधुनिक एवं पारंपरिक जल प्रबंधन विधियों के समन्वित उपयोग, जन–जागरूकता और वैज्ञानिक योजना द्वारा ही जल–संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है। यदि समय रहते व्यापक कदम न उठाए गए, तो भारत की दीर्घकालिक जल–सुरक्षा और भौगोलिक स्थिरता गंभीर संकट का सामना कर सकती है।

मुख्य शब्द– जलवायु परिवर्तन, भूजल स्तर गिरावट, जल–संकट, पुनर्भरण, जल प्रबंधन, पारिस्थितिक स्थिरता ।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन ने भारत के भूगोलिक परिदृश्य को गहराते हुए जलवायु के पैटर्न में लंबे समय से बनी स्थिरता को प्रभावित किया है। तापमान में निरंतर वृद्धि और असामान्य वर्षा की घटनाओं ने देश के विविध भौगोलिक क्षेत्रों में जल चक्र की परंपरागत व्यवस्था को बिगाड़ दिया है। सूखे और तीव्र जलापूर्ति की घटनाएं न केवल प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव डाल रही हैं, बल्कि मानव जीवन एवं आर्थिक गतिविधियों के लिए भी नवीन चुनौतियों का सृजन कर रही हैं। इन परिवर्तनों का मुख्य असर भूजल स्तर पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिसने अनेक क्षेत्रों में जलस्तर में निरंतर गिरावट को जन्म दिया है। जलवायु परिवर्तन से जुड़ी इन गिरावटों का तात्पर्य केवल जलस्तर में कमी तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह क्षेत्रीय जल उपलब्धता, कृषि उत्पादन, आर्थिक स्थिरता तथा सामाजिक समरसता आदि अनेक आयामों को प्रभावित कर रही है। इस परिवर्तन की जड़ें जलवायु के बदलते पैटर्न व इसके दीर्घकालिक प्रभावों में छिपी हैं, जो आवश्यक है कि हम समझें और तदनुसार कार्यवाई करें। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यापक अध्ययन और सतत निगरानी द्वारा जलवायु परिवर्तनों का आकलन कर, विधिपूर्वक नीति निर्धारण एवं प्रभावी योजनाओं के माध्यम से इनके दुष्प्रभावों को कम करने की आवश्यकता है। यह आवश्यक है कि संसाधनों का संरक्षण और पुनर्भरण सुनिश्चित किया जाए, ताकि जल का टिकाऊ उपयोग तथा जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन में सफलता प्राप्त हो सके।[1]

भू–आकृतिक प्रक्रियाएं

भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भूमि का रूपांतरण तथा भू–आकृतिक प्रक्रियाएं प्राकृतिक जलवायु व्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। पर्वतीय प्रदेशों में उच्च पर्वत श्रृंखलाएं, हिमनद और ग्लेशियर जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं, जो जमीनी स्तर पर जल प्रवाह एवं मौसमी चक्रों को प्रभावित करते हैं। इन क्षेत्रों में पर्वतीय

मॉड्यूल के सक्रिय हिंद–हिमालयी मैदान और घाटी बैकवाटर, जल धारण की रचनात्मकता को नियंत्रित करते हैं और जलस्रोतों की पुनःपूर्ति का आधार बनते हैं।

इसके विपरीत, मैदान क्षेत्रों में भूमि के फैलाव, नदी घाटियों का निर्माण एवं स्थलाकृतिजन्य प्रक्रियाएं जल संचयन एवं जल निकासी के प्रवृतियों को आकार देती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप की स्थलीय विशेषताएँ, जैसे सिंधु, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र जैसी प्रमुख नदियों का प्रवाह, क्षेत्रीय जलवायु पर अनिवार्य रूप से प्रभाव डालती हैं। साथ ही, इन नदियों के घाटी क्षेत्र की भू–आकृतिक बनावट, जल प्रवाह की दिशा एवं विन्यास, जल की उपलब्धता एवं बंदरबांट को निर्धारित करती है। सीमांत और दोहन क्षेत्रीय भूभाग में, भूमिगत जल स्रोतों का पुनः भरने हेतु उपयुक्त संरचनात्मक विशेषताएँ जैसे जलधारण क्षमता, कंप्रेशन विकिरण एवं भौगोलिक संरचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। इन संरचनाओं के बिना, जल स्तर में निरंतर गिरावट और भूजल संकट गहरा होता जाता है। उनके प्रभाव के क्षेत्र, जैसे जलप्रवाह का प्रवर्तन, भूमिगत जल के स्तर में गिरावट एवं जल प्रवाह की दिशा, भूगोल और जलवायु दोनों का समन्वित अध्ययन आवश्यक बन जाते हैं।[2]

इस प्रक्रिया में, पर्वतीय क्षेत्रों में जल स्रोतों का सूखना एवं मैदानी भागों में भूजल के अनियंत्रित संचयन का प्रमाण मिलता है। ये भूगर्भीय प्रक्रियाएं प्राकृतिक एवं मानवीय कार्यकलापों से प्रभावित होकर, क्षेत्रीय जल संसाधनों पर गहरा प्रभाव डालती हैं। अतः, इस क्षेत्राध्याय का अध्ययन भूगर्भीय संरचनाओं, जलधारण क्षमताओं एवं भू–आकृतिक प्रक्रियाओं की गहन समझ का आधार प्रदान करता है, जो जलवायु परिवर्तन के दीर्घकालिक प्रभावों का निरीक्षण एवं प्रबंधन में आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन के संकेत और प्रक्षेप

जलवायु परिवर्तन के संकेत और प्रक्षेप मुख्य रूप से तापमान में निरंतर वृद्धि, वर्षा के पैटर्न में बदलाव एवं परम्परागत मौसमी चक्रों में अस्थिरता के रूप में सामने आते हैं। वैश्विक उष्मा में बढ़ोत्तरी के कारण भारत के अधिकांश भागों में औसत तापमान में लगातार वृद्धि दर्ज की गई है, जिससे गरमी की लहरें अधिक तीव्र और लंबी होती जा रही हैं। इसी प्रकार, वर्षा की मात्रा और वितरण में भी असमानता उत्पन्न हुई है। सामान्यतः जो मानसूली वर्षा जुलाई से सितंबर के बीच होती है, अब कभी–कभी अनियमितता और तीव्रता के साथ वर्षा होती है, जिससे सूखा या बाढ़ जैसे असामान्य चक्र बार–बार आ रहे हैं। कई क्षेत्रों में घटते पानी के स्रोत और कम हो रहे प्राकृतिक जलधाराएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

विशेष रूप से, आर्द्रता में गिरावट और तीव्र सूखा चक्र के प्रवृत्तियों में वृद्धि हो रही है, जो खास कर खारेपन और मिट्टी की उर्वरता पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है। मानसून के पैटर्न में इस प्रकार का जटिल परिवर्तन भारत के विभिन्न भू–आकृतिक क्षेत्रों को प्रभावित कर रहा है, जिससे विभिन्न क्षेत्र जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गए हैं। इससे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और कृषि पहलों पर भारी दबाव निर्माण हो रहा है। इन परिवर्तनों का सीधा असर न केवल जल संसाधनों की मात्रा एवं कुशलता पर पड़ रहा है, बल्कि मानव जीवन एवं आर्थिक गतिविधियों में भी निरंतर परिवर्तन हो रहा है।[3]

(i) औसत तापमान एवं वर्षा पैटर्न में परिवर्तनः औसत तापमान में वृद्धि और वर्षा पैटर्न में आए परिवर्तन का प्रभाव भारतीय भूगोल पर दीर्घकालिक रूप से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैश्विक तापमान में वृद्धि ने भारतीय उपमहाद्वीप में तापमान के औसत मानकों को ऊपर उठाया है, जिससे न केवल गर्मी का तीव्रता बढ़ी है, बल्कि सूखे एवं उमस जैसी चरम मौसम अवस्थाएँ भी आम हो गई हैं। यह बदलाव नमी एवं वायु प्रवाह में रुकावट उत्पन्न कर, मौसमी वर्षा के प्राकृतिक चक्र को प्रभावित कर रहे हैं। भारतीय मानसून मौसमी चक्र का मुख्य आधार है, परन्तु पिछले दशकों में इसकी शुरुआत, अवधि और वितरण में उल्लेखनीय असमान्यताएँ देखी गई हैं। कई क्षेत्रों में लगातार वर्षा की मात्रा में कमी आई है, तो कुछ इलाकों में अत्यधिक वर्षा से बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हुई है।

वर्षा के असामान्य पैटर्न का परिणाम जल प्रवाह में अस्थिरता, जल संग्रहण एवं जल संसाधनों के प्रबंधन में संकट के रूप में उत्पन्न हो रहा है। मंद एवं असमान्य वर्षा से न केवल कृषि कार्य प्रभावित होते हैं, बल्कि भूजल के स्रोत भी सूखने की संभावना बढ़ रही है। समुचित वर्षा एवं तापमान में इनके बदलाव के चलते भूमिगत जल भंडार दिन–ब–दिन सूखते जा रहे हैं और इसके कारण भूजल स्तर में गिरावट का दौर तेज होता जा रहा है। इन परिवर्तनों का दीर्घकालिक प्रभाव न केवल पर्यावरणीय, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी परिलक्षित होता है, जहां जल संसाधनों का असमान वितरण विकसित एवं विकासशील दोनों ही क्षेत्रों में सामाजिक असमानता को बढ़ावा दे रहा है।

भारतीय क्षेत्र में तापमान एवं वर्षा पैटर्न में हुए इन परिवर्तनों का विश्लेषण कर, जलवायु अनुकूलन के उपायों को अपनाया जाए ताकि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को न्यूनतम किया जा सके। वायु प्रवाह एवं मौसमी बदलाव का अध्ययन करके, जल संरक्षण एवं जल संसाधनों का सतत उपयोग सुनिश्चित करना अनिवार्य हो गया है। साथ ही, इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, प्रभावी नीति एवं योजना निर्माण के द्वारा जल संसाधनों का प्रबंधन एवं संरक्षण करके भूजल की स्थिरता को सुनिश्चित करना आवश्यक है।[4]

(ii) आर्द्रता, तीव्र अपवाद और सूखा चक्रः आर्द्रता का स्तर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से व्यापक रूप से प्रभावित

होता है, जो कृषि, पारिस्थितिकी तंत्र और मानव जीवन दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के कारण औसत तापमान में वृद्धि एवं वर्षा के पैटर्न में असमान्यता के साथ–साथ आर्द्रता के स्तर में बदलाव भी दिखाई दे रहे हैं। विशेष रूप से, सूखे के दौरान आर्द्रता का स्तर गिरता है, जिससे मिट्टी और वायुमंडल के बीच संतुलन बिगड़ता है। यह परिवर्तन वायुमंडलीय दबाव और वायु योग्यता में असामान्यताओं को जन्म देता है, जिससे जलवायु में तीव्र अपवाद की स्थितियां उत्पन्न होती हैं।[5]

तीव्र सूखे चक्र, जो जलवायु परिवर्तन का एक प्रवृत्ति रूप हैं, न केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं बल्कि मानवीय गतिविधियों पर भी गंभीर प्रभाव डालते हैं। सूखे के दौरान आर्द्रता का घटता स्तर भूमि की नमी कम कर देता है, जिससे फसलों की उगाई में कठिनाई होती है और पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता कमजोर हो जाती है। इसी प्रकार, तीव्र अपवाद जैसे असामान्य वर्षा, अत्यधिक तापमान और सूखे की घटनाएं जलवायु की अनिश्चितता को दर्शाती हैं। इन प्राकृतिक घटनाओं का संकुचित प्रभाव भूजल स्तर पर भी स्पष्ट दिखाई देता है, जिससे भूमिगत जल की पुनर्भरित करने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है। यह परिवर्तन भूजल संसाधनों के संरक्षण और प्रबंधन में नई चुनौतियों को जन्म देता है। जलवायु परिवर्तन से पैदा हुई उत्पन्न परिसरों एवं प्राकृतिक चक्रों में असमान्यताओं के कारण, सूखे एवं वाष्पीकरण की प्रक्रिया तेज हो जाती है, जिससे भूमिगत जल का स्तर तेजी से गिरावट की ओर बढ़ रहा है। इस स्थिति का प्रभाव दीर्घकालिक रूप से जल सुरक्षा, कृषि उत्पादन एवं आर्थिक स्थिरता पर पड़ रहा है। अतः आर्द्रता, तीव्र सूखे और अनियमित तापमान जैसे तीव्र अपवाद जलवायु परिवर्तन की अनिवार्य अभिव्यक्ति हैं, जो भारत के विभिन्न क्षेत्रीय जल, भूमि और पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित कर रहे हैं।

भूजल प्रणाली की स्थितियाँ

भूजल प्रणाली की वर्तमान स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो चुकी है, जिसमें भूगर्भीय संरचनाएँ और जलधारण की क्षमता विशेष रूप से प्रभावित हो रही हैं। भारत में विविध भू–आकृतिक क्षेत्र होने के कारण भूजल संसाधनों की उपलब्धता और परिपोषण विविधितापूर्ण है। पर्वतीय क्षेत्रों में पर्वतीय ग्लेशियरों और विशेष जलधाराओं का योगदान अधिक होते हुए भी, पर्वतीय ग्लेशियरों के पिघलने से निर्भरता बढ़ी है। मैदानी क्षेत्रों में तलछटी चट्टानों के जलधारण क्षेत्र सीमित हैं, जो जलस्तर में गिरावट का मुख्य कारण बनते हैं। विस्तृत जलग्रहण क्षेत्र और खनिज जलधारण संरचनाएँ जल संग्रहण के लिए अनुकूल हैं, परन्तु जल अनावश्यक उपयोग और प्रदूषण के कारण इनका संरक्षण प्रभावित हो रहा है।

भूजल स्तर में गिरावट के प्रमुख कारण मानव गतिविधियों में वृद्घि, वनोन्मूलन, अवैध हैण्डपंप और कम सतत जल प्रबंधन हैं। अत्यधिक और अनियंत्रित जल निकासी, खनिज जलधारण में विसंगतियाँ और सतही जल संसाधनों का अत्यधिक लाभ उठाना इस गिरावट को प्रोत्साहित करता है। क्षेत्रवार विश्लेषण से पता चलता है कि उत्तर भारत के सभी प्रमुख कृषि केंद्रों, जैसे हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश, में जल स्तर तेजी से गिर रहा है, वहीं दक्षिणी भारत में भी सूखे और जल संकट का प्रभाव स्पष्ट है। गत वर्षों में विशेष रूप से पश्चिमी और मध्य भारत के कई इलाक़ों में भूजल स्तर के तेजी से नीचे गिरने के संकेत मिलने लगे हैं। यह स्थिति दीर्घकालीन जल सुरक्षा को खतरे में डाल रही है तथा कृषि, उद्योग एवं घरेलू उपयोग के लिए जल की उपलब्धता को अवरुद्ध कर रही है। इन प्रवृत्तियों का अनुश्रवण, जागरूकता एवं नियामक उपाय जरूरी हैं ताकि भूजल संसाधनों का स्थायी संरक्षण सुनिश्चित हो सके।[6]

(i) भूगर्भीय संरचनाएं और जलधारणः भूगर्भीय संरचनाएं एवं जलधारण की क्षमता स्थलीय जल संसाधनों के संरक्षण एवं नियोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत में विविध भूगर्भीय संरचनाएं जैसे कि प्राचीन घाटी पुनःस्थापित क्षेत्र, सोपान और मैदानी क्षेत्र, भूतल की जलधाराओं तथा खनिज घाटियों का परिष्कृत अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। ये संरचनाएं प्रदत्त स्थलाकृतिक विशेषताओं और भूगर्भ की बनावट के आधार पर विभिन्न जलधारण क्षमता प्रदान करती हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में कठोर चट्टानें और गहरे ढालें जलधारण की क्षमता सीमित कर देती हैं, जबकि मैदानी क्षेत्रों में विस्तृत फ्लैट इलाके और दोमट मिट्टी जल संग्रहण के लिए अनुकूल होते हैं।[7]

भूगर्भीय संरचनाएं जल संचयन की प्रक्रिया में स्वाभाविक रूप से भूमिका निभाती हैं। जलग्रहण क्षेत्रों की रचना, जैसे कि जलाशय, गहरे जलाशय एवं वायुविहीन बेसिन, भूमिगत जल की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं। इन संरचनाओं की स्थिरता एवं जलधारण क्षमता प्राकृतिक कारणों से प्रभावित हो सकती है, जैसे भू–आकृतिक परिवर्तनों, जल प्रवाह में कमी या भूकंपीय गतिविधियों के कारण। इसके अतिरिक्त, मानवीय गतिविधियों जैसे अवैध उत्खनन, अनाधिकृत भू–आधार निर्माण और वृहद परियोजनाएं जलधारण क्षमताओं को प्रभावित कर सकती हैं। जल धारण संबंधी संरचनाओं का अमूर्त विश्लेषण एवं सतत संरक्षण आवश्यक है ताकि भूजल स्तर की गिरावट को नियंत्रित किया जा सके।[8]

इस दिशा में उन्नत भू–भौतिक एवं भू–आकृतिक सर्वेक्षण, सिंचाई एवं जल संरक्षण योजनाओं के समेकित कार्यान्वयन, तथा भूगर्भीय संरचनाओं के अनुरूप जलसंसाधन प्रबंधन की रणनीतियों का कार्यान्वयन अनिवार्य है। इन प्रयासों से जलधारण क्षमताओं का संरक्षण एवं पुनःपूर्ति संभव है, साथ ही दीर्घकालिक जल सुरक्षा एवं जल संसाधनों का सतत उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

(ii) भूमिगत जल स्तर में गिरावट के प्रमुख कारण

भूमिगत जल स्तर में गिरावट के मुख्य कारण विविध हैं, जिनमें मानवीय गतिविधियों का योगदान सर्वोपरि है। जल संसाधनों का अनियंत्रित और अत्यधिक दोहन सबसे प्रमुख कारण है, जिसके कारण यह संसाधन जल्द ही सीमित होता जा रहा है। कृषि में जल की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर खपत होने से भूजल पर जोरदार दबाव पड़ता है। विशेषतः सूखे तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में, जल का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है, किंतु इन क्षेत्रों में पुनर्भरण की प्रक्रिया अपेक्षाकृत धीमी है। इसके अलावा, जल संरक्षण की उपेक्षा और मिट्टी की अपर्याप्त क्षरण क्षमता भी जल स्तर को कमजोर बनाती है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की तीव्र गति के साथ ही जलभंडारण संरचनाओं का अनियंत्रित निर्माण भी भूजल के योगात्मक स्तर को प्रभावित करता है। सामान्यतः भूमिगत जल का प्राकृतिक पुनर्भरण मुख्यतः वर्षा की धाराओं और जल प्रवाह से होता है, लेकिन प्रदूषण और जल प्रवाह में बाधाओं के कारण यह प्रक्रिया बाधित होती है। प्रदूषण के कारण जल स्रोतों का उपयोग असुरक्षित हो जाता है, जिससे जल का संग्रहण और पुनर्भरण प्रभावित होता है।[9]

इसके अतिरिक्त, जल का व्रद्धि कार्य, नदी क्षेत्र और जलाशयों के संरक्षण में कमी एवं संदूषण का स्तर भी भूमिगत जल स्तर गिराने में सहायक सिद्ध हो रहा है। जल संरक्षण के लिए आवश्यक प्रयासों की अनुपस्थिति और नीति–निर्माण में दीर्घकालिक योजनाओं का अभाव इन स्तरों को गहराई तक गिराने के लिए जिम्मेदार है। इन सभी कारणों के संयोजित प्रभाव से न केवल भूजल का स्तर घटता है, बल्कि इसकी गुणवत्ता भी प्रभावित होती है, जिससे सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं।

भूजल गिरावट के प्रभाव

भूजल स्तर में निरंतर गिरावट का सबसे गंभीर प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ा है। भूमि की जलधारण क्षमता कम होने से फसलों की सिंचाई के लिए उपलब्ध जल स्रोत सीमित हो गए हैं, जिससे उत्पादन में कमी आ रही है। यह स्थिति खाद्य सुरक्षा को खतरे में डाल रही है और किसानों की आय पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है। साथ ही, भूजल का अत्यधिक दोहन जल आपूर्ति के स्थायित्व को प्रभावित कर रहा है, जिससे जल संकट गहरा रहा है। भूजल स्तर में गिरावट से जल निकासी और भूमिगत जल का पुनर्भरण बाधित हो रहा है, जिससे भूमिगत जल का संकुचन निरंतर जारी है। इस क्रम में, भूगर्भीय संरचनाओं में परिवर्तन और जलधारण क्षमता का क्षरण होने के कारण स्थायी जल संसाधनों की उपलब्धता घट रही है। क्षेत्रवार प्रवृत्तियों के आधार पर, शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में भूजल का तेजी से क्षरण देखा गया है, जो दीर्घकालीन भू–आक्रामकता एवं सूखे की आवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है। इन स्थितियों का प्रभाव सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर भी स्पष्ट दिखाई देता है, विशेषकर उन समुदायों में जहां कृषि एवं जल के अभाव में जीवन यापन अत्यंत कठिन हो गया है। अतः, भूजल गिरावट का प्रभाव न केवल प्राकृतिक संसाधनों पर है, बल्कि सामाजिक संरचना और आर्थिक विकास पर भी विनाशकारी प्रभाव डाल रहा है। समय रहते उपाय न किए गए तो परिदृश्य और भी भयावह हो सकता है, जिससे भारत की भूगोलिक स्थिरता एवं दीर्घकालिक संसाधन सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

(i) कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षाः भूजल स्तर में निरंतर गिरावट का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि क्षेत्र पर दिखाई देता है, जो भारत की खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा के पैटर्न में परिवर्तन होने से नहरों, नदियों और भूमिगत जल स्रोतों की पुनःपूर्ति की गतिविधियों में बाधा उत्पन्न होती है। विशेष रूप से सूखे और असामान्य वर्षा चक्र के दौरान, भूमिगत जल के स्तर में गिरावट तीव्र हो जाती है, जिससे सिंचाई प्रणालियों में लगातार कमी आती है। भारत के विभिन्न कृषिगत क्षेत्रों में वर्षा आधारित खेती प्रमुख है, और जल संसाधनों की कमी से फसलों की वृद्धि पर प्रभाव पड़ रहा है, जिससे उत्पादन में गिरावट और विविधता में कमी आ रही है। इससे न केवल किसान की आर्थिक स्थिति प्रभावित हो रही है, बल्कि देश की खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ रही है।

खाद्य उत्पादन में गिरावट का तात्कालिक और दीर्घकालिक प्रभाव देश की खाद्य आपूर्ति श्रृंखलाओं पर पड़ता है, जिसके कारण महंगाई, गरीबी और प्राकृतिक संसाधनों का अधिक पुनःविनियोजन जरूरी हो जाता है। कृषि की प्रतिस्पर्धात्मकता एवं स्थिरता के लिए जलप्रबंधन में नवीनतम तकनीकों और सतत् जल संसाधन रणनीतियों का कार्यान्वयन आवश्यक हो

गया है। सूखे और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निपटने हेतु विशेष ध्यान देकर जल संरक्षण, जल संचयन और भूमिगत जल पुनर्भरण के अभिनव उपाय करना होने चाहिए। यदि इन उपायों को शीघ्रता से नहीं अपनाया गया, तो कृषि क्षेत्र के विनाशकारी परिणाम राष्ट्रीय स्थिरता एवं विकास का भविष्य संकट में डाल सकते हैं। अतः स्थायी और समुचित जल प्रबंधन प्रणाली का विकास कर कृषि उत्पादन एवं खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना अत्यावश्यक है।

(ii) भूर्जन और भू–आयामीय परिवर्तनः भूर्जन और भू–आयामीय परिवर्तन भारत के भूगोलिक परिदृश्य में गंभीर और दीर्घकालिक बदलाव ला रहे हैं। भूजल स्तर में निरंतर गिरावट न केवल सतह जल निकायों की आवश्यकता को बढ़ा रही है, बल्कि इसके साथ ही भू–आकृतिक संरचनाओं में भी परिवर्तन हो रहे हैं। भूजल के अत्यधिक दोहन के कारण भूमिगत जलाशयों का आकार सिकुड़ रहा है, जिससे भूगर्भ की स्थिरता प्रभावित हो रही है। विशेष रूप से, विभिन्न भूगर्भीय संरचनाओं में जल प्रवाह का रास्ता बदल रहा है, जिससे भूखंडों का स्थायित्व और तलछट का वितरण भी प्रभावित हो रहा है। इससे न केवल प्राकृतिक स्थलमंडलों में गतिशीलता उत्पन्न हो रही है, बल्कि भू–आयामीय रूप से भी स्थिरता का संकट विराजमान हो रहा है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, भूखंड की स्थिरता प्रभावित होती है और प्राकृतिक जलधाराएँ कमजोर हो रही हैं। अधिकांश क्षेत्रों में भूमिगत जल के स्तर में गिरावट का मुख्य कारण मानवजनित गतिविधियों के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन का सम्मिलित प्रभाव है। औद्योगिक एवं कृषि क्षेत्रों में जल की अत्यधिक खपत के कारण भूमिगत जल का पुनर्भरण कम हो रहा है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन के कारण सापेक्ष आर्द्रता की कमी एवं सूखे चक्र से भूजल पुनः भरने की प्रक्रिया प्रभावित हो रही है। इस तरह के भू–आयामीय परिवर्तनों का प्रभाव न केवल जल संरक्षण प्रयासों को चुनौतीपूर्ण बना रहा है, बल्कि भूभौतिक संरचनाओं में स्थिरता एवं पर्यावरणीय संतुलन पर भी गंभीर प्रभाव डाल रहा है। अतः इन बदलावों का अध्ययन और समझ आवश्यक है ताकि दीर्घकालिक पानी संरक्षण एवं भू–आधारित स्थिरता की रणनीतियों का निर्धारण सुनिश्चित किया जा सके।[10]

जलवायु अनुकूलन और जल–सुरक्षा के उपाय

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से उत्पन्न जल–संकट के समाधान हेतु विभिन्न अनुकूलन उपकरण एवं रणनीतियों का अपनाना अनिवार्य हो गया है। सर्वप्रथम, जल संरक्षण एवं संचयन के लिए पारंपरिक एवं नवीन पद्धतियों का समावेश जरूरी है। वर्षा जल संचित करने के लिए जल–ठिकानों का निर्माण, वृक्षारोपण एवं नदी संरक्षण अभियानों का कार्यान्वयन आवश्यक है। इससे न केवल जल संग्रहण क्षमता बढ़ेगी, बल्कि वर्षा आधारित जल स्रोतों का संरक्षण भी संभव होगा। इसके अतिरिक्त, जल के पुनर्भरण हेतु भूमिगत जल पुनर्संचयन प्रणालियों का विकास एवं प्रबंधन अपरिहार्य बन गया है। इन प्रणालियों में जल संचयन, चौम्बर बनाना, और भूमिगत जल पुनर्भरण टैंक का निर्माण शामिल हैं, जिसकी मदद से जल स्तर को स्थिर एवं संतुलित किया जा सकता है।

साथ ही, जल उपयोग की दक्षता एवं उसके प्रबंधन में जागरूकता का प्रसार भी आवश्यक है। उपभोक्ताओं में जल की बचत के लिए प्रचार–प्रसार एवं जन–जागरूकता अभियानों का आयोजन कर सकते हैं। इन प्रयासों से जल का अपव्यय नियंत्रित होगा और संसाधनों का सतत् प्रबंधन संभव होगा। नीति–निर्माण और संस्थागत संयोजन सर्वोपरि हैं। स्थानीय, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त कृषि, औद्योगिक एवं आवासीय परिसर के लिए जल–संबंधी नियमावली बनाना व उनका मजबूत क्रियान्वयन अनिवार्य है। जल संसाधान विभाग, स्थानीय निकाय एवं नागरिक संगठन मिलकर सतत् जल प्रबंधन का कार्य सुनिश्चित करें।द्य

(i) जल–संरक्षण और संचयन रणनीतियाँ

जल–संरक्षण एवं जल संचयन रणनीतियाँ जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने हेतु अत्यंत आवश्यक सिद्ध होती हैं। इन रणनीतियों का उद्देश्य न केवल जल की उपयुक्त मात्रा सुनिश्चित करना है, बल्कि जल की गुणवत्ता के संरक्षण और दीर्घकालिक संचयन प्रथाओं को बढ़ावा देना भी है। प्रभावी जल–संरक्षण के लिए प्राचीन और पारंपरिक तरीकों का आधुनिकीकरण आवश्यक है, जैसे कि वर्षा जल संचयन, जलाशयों का निर्माण और जल प्रवाह नियंत्रित करने वाले तंत्रों का सुदृढ़ीकरण। वर्षा जल संचयन को प्रोत्साहित करते हुए शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में जलग्रहण नालियों, टैंक, और कुओं का विस्तृत उपयोग किया जाना चाहिए। मौजूदा जलस्रोतों का संरक्षण एवं पुनः चार्जिंग सुनिश्चित करने के लिए, जलस्रोतों के आसपास वृक्षारोपण, मिट्टी संरक्षण और जल प्रवाह में मदद करने वाले ये उपाय जरूरी हैं। इसके अतिरिक्त, कृषि क्षेत्र में रूपांतरित विधियों जैसे बूंदीय सिंचाई और रीसाइक्लिंग का प्रयोग, जल का संरक्षण करने में सहायक हो सकता है।[12]

सरकार एवं संबंधित संस्थानों को इन उपायों का क्रियान्वयन नीति के तहत तीव्रता से करना चाहिए। नागरिकों के जागरूकता एवं सहभागिता से जल–संरक्षण का कार्यक्रम मजबूत होगा। जल संरक्षण के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकियों व स्मार्ट जल प्रबंधन प्रणालियों का समावेश भी अनिवार्य है, ताकि जल की असमान वापसी, संचयन और पुनर्भरण बेहतर तरीके से किया जा सके। इन सब उपायों की सफलता का आधार सुगठित नेतृत्व और समन्वित प्रयास हैं, जो जलवायु परिवर्तन

के दीर्घकालिक प्रभावों को धीमा करने में सहायक सिद्ध होंगे।

(ii) भूमिगत जल पुनर्भरण और पुनर्संचयनः भूमिगत जल पुनर्भरण और पुनर्संचयन उनके संरक्षण और टिकाऊ उपयोग के लिए अनिवार्य उपाय हैं, जो वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने में सहायता प्रदान करते हैं। भूजल स्तर में निरंतर गिरावट के चलते न केवल जल संसाधनों की कमी हो रही है, बल्कि भूगर्भीय संरचनाओं में स्थिरता भी प्रभावित हो रही है। अतः, इन संसाधनों का संरक्षण और पुनर्प्राप्ति नितांत आवश्यक हो गया है। इसके अंतर्गत, सतही जल स्रोतों का संरक्षण तथा जल का पुनर्प्राप्ति हेतु विकसित परियोजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। इनमें वर्षा जल संग्रहण, प्राकृतिक जलधारण संरचनाओं का निर्माण, व जलीय निकासी प्रणालियों का समुचित प्रबंधन शामिल है। इससे भूजल का प्राकृतिक पुनर्चक्रण सुनिश्चित हो सकता है, जिससे जल स्तर में धीरे–धीरे वृद्धि संभव है।

सभी योजनाओं एवं पहलुओं में सूक्ष्म सम्यक पारदर्शिता एवं वैज्ञानिक आधार पर निर्णय लेना अत्यंत महत्वपूर्ण है। भूजल पुनर्भरण के लिए तालाब, कुंआ, वाटर हार्वेस्टिंग जैसे सूक्ष्म उपायों को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके अलावा, कृषि क्षेत्रों में टिकाऊ तकनीक का प्रयोग व जल के अनावश्यक अपव्यय को रोकने हेतु जागरूकता अभियानों का संचालन आवश्यक है। इस क्रम में, जल संसाधनों का समुचित प्रबंधन एवं भूजल पुनःप्राप्ति की प्रक्रिया स्थानीय समुदायों की भागीदारी से ही प्रभावी बन सकती है।

सरकार और विभिन्न संस्थान स्वायत्त जलसंसाधन प्रबंधन की दिशा में नवीनतम तकनीकों का उपयोग कर, प्रोजेक्ट्स का संचालन कर रहे हैं। सतत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुनर्संचयन प्रक्रियाओं का पालन कर, भूजल का संरक्षण एवं पुनःउपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। अतः, भूजल पुनर्भरण एवं पुनर्संचयन के लिए प्रभावी नीतियों की स्थापना और उनका अनुश्रवण आवश्यक है, ताकि जल के गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों का संरक्षण कर सतत विकास संभव हो सके।[13]

जलप्रबंधन की प्रभावशीलता–

नीति–निर्देश और कार्यान्वयन हेतु मुख्य मार्ग का निर्धारण जलप्रबंधन की प्रभावशीलता में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे संबंधित कदमों को प्राथमिकता देने और क्रियान्वयन के लिए सुसंगत रणनीतियों का निर्माण आवश्यक है। सबसे पहले, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं प्रवृत्तियों के आधार पर दीर्घकालिक योजना बनाना आवश्यक है, जिसमें जल स्रोतों का समुचित मूल्यांकन एवं संरक्षण शामिल हो। इस प्रक्रिया में स्थायी जल–स्रोत विकसित करने, दीर्घकालिक भूजल नीतियों का निर्धारण एवं प्रबंधन प्रणालियों का आधुनिकीकरण आवश्यक माना जाता है। इसके अतिरिक्त, जल उपयोग में सततता सुनिश्चित करने हेतु जागरूकता अभियानों का संचालन और किसानों, उद्योगों एवं नागरिकों के मध्य समन्वय स्थापित करना अनिवार्य है।

नीति–निर्देशन के तहत, जलसंसाधनों का समुचित पुनर्उपयोग और पुनःभराव योजना का विकास भी महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही, स्मार्ट जलप्रबंधन तकनीकों का प्रयोग जैसे कि जलस्रोत का समय–समय पर निगरानी तथा जल प्रवाह और स्तर का अवलोकन इन मार्गों में शामिल हैं। संस्थागत सशक्तिकरण एवं स्वायत्तता को बढ़ावा देते हुए संबंधित विभागीय एवं स्थानीय निकायों के बीच समन्वय स्थापित करना भी सफलता की कुंजी है। वित्तीय संसाधनों का सटीक आवंटन, जल नीति में समावेश, और कर प्रोत्साहन योजनाओं का क्रियान्वयन अनिवार्य हैं ताकि जल संरक्षण में सुधार हो सके।

इसके अतिरिक्त, जल नीति का क्रियान्वयन स्थानीय समुदायों की भागीदारी और सामाजिक जागरूकता के बिना अधूरा रहता है। इस हेतु, व्यापक स्तर पर शिक्षा एवं नागरिक संवाद अभियानों को प्रारंभ करना चाहिए। जलवायु परिवर्तन के चुनौतीपूर्ण प्रभावों से निपटने के लिए, जल नीति में नवीन तकनीकें एवं नवाचार का समावेश भी आवश्यक है, ताकि भूजल स्तर में गिरावट को नियंत्रित किया जाए और दीर्घकालिक जल सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। अंततः, प्रभावशाली नीति–निर्देश एवं स्वच्छ, पारदर्शी क्रियान्वयन से ही भारत के जल–संबंधी चुनौतीपूर्ण स्थिति को सुलझाना संभव है।[14]

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन के कारण भारत में भूजल स्तर की गिरावट एक जटिल और आपूरणीय प्रक्रिया बन गई है, जो स्थायी पर्यावरणीय और सामाजिक चुनौतियों को जन्म दे रही है। वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धिद्वारा सूखाग्रस्त क्षेत्रों की संख्या में वृद्धि हुई है, जिससे वर्षा का पैटर्न असामान्य हो गया है और सूखे के चक्र बढ़ गए हैं। इन गंभीर परिवर्तनाओं का प्रभाव केवल सतही जल स्रोतों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसकी दीर्घकालिक परिणतियां भूगर्भ जल पर केंद्रित हैं। भूगर्भीय संरचनाओं और जलधारण क्षमताओं के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में जल स्तर की गिरावट की प्रवृत्तियों में व्यापक भिन्नताएं देखी गई हैं। विशेष रूप से, मैदान क्षेत्र और पठारी भूभाग में जल स्तर की तीव्र कमी उत्पन्न हुई है, जो ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में जलसंजीवनी का संकट उत्पन्न करती है। इसके परिणामस्वरूप, न केवल कृषि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है, बल्कि आपूर्ति के अभाव में सामाजिक और आर्थिक असमानताओं का भी विस्तार हुआ है। जलग्रहण एवं पुनर्भरण की कमी के कारण भूजल स्रोतों का अत्यधिक दोहन हुआ है, जिससे जल स्तर में लगातार गिरावट हो रही है। यह गिरावट कृषि उत्पादन में गिरावट, खाद्य सुरक्षा को खतरे और आर्थिक असमानताओं को बढ़ावा दे रही है। इसके साथ ही, भूजल का अवैध दोहन अत्यधिक केंद्रीय रूप से सरकार और स्थानीय संस्थानों पर दबाव डाल रहा है। प्राकृतिक जल चक्र में

यह असंतुलन जल संसाधनों के अनियंत्रित उपयोग और प्रदूषण का भी परिणाम है। इस स्थिति का मुकाबला करने के लिए जल संरक्षण, जल पुनर्भरण और सतत प्रबंधन आवश्यक हैं। जल–संरक्षण और पुनर्प्राप्ति के उपायों को कारगर बनाने के लिए नीतिगत सुधार एवं जागरूकता आवश्यक हैं।

भविष्य में, जलवायु परिवर्तन के स्थायी प्रभावों को कम करने के लिए ठोस रणनीतियों का विकास और त्वरित क्रियान्वयन जरूरी है। भूमि संरक्षण, जलवायु अनुकूलन गतिविधियों तथा राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर मजबूत संस्थागत ढांचों का विकास इन प्रयासों का आधार है। इसी के साथ, नीति–निर्माण एवं कार्यान्वयन अधिक प्रभावी और समावेशी बनाकर जल सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। अंततः, जल और भूजल का स्थायी संरक्षण ही मानव और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखने का एकमात्र उपाय है। समय रहते किए गए कदम ही भविष्य में जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से मुकाबला कर सकते हैं और सतत विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ–सूची–

1. मजिद हुसैन. (2008). भौतिक भूगोल (हिन्दी संस्करण). रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
2. बर्क, एम., सोलोमन, एम., और हिशमैन, ए. (2015). आर्थिक उत्पादन पर तापमान का गैरदृरेखीय प्रभाव। प्रकृति, 527, 235–239।
3. चंद, राकेश; साहा, संजय; और सिन्हा, रंजन। (2015). भारत में कृषि आय का अनुमान और विवेचन, 1983–84 से 2011–12। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 50(22), 139–145।
4. चंद, राकेश; और श्रीवास्तव, नंदिनी। (2012). कृषि विकास और उसके निर्धारकों में अस्थायी और स्थानिक विविधताएँ। सामाजिक, 47(26), 55–64।
5. सविंद्र सिंह. (2019). भौतिक भूगोल, प्रवालिका पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
6. चंद, राकेश; प्रसन्ना, पी. एल.; और अरुणा, सिंह। (2011). खेत का आकार और उत्पादकतारू छोटे किसानों की समस्या। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 5–11।
7. विकास धूत. (2021). भौतिक भूगोल. आर.जी. बुक्स, नई दिल्ली।
8. मुखर्जी, रंजन। (2011). ग्रामीण आजीविका में सुधार। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 5–11।
9. चंद, राकेश। (2010). खाद्य मुद्रास्फीति की प्रकृति और कारण। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 10–13।
10. चंद, राकेश; राजू, एस. एस.; और पांडेय, एल. एस. (2007). कृषि में विकृति संकटः राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर गंभीरता और विश्लेषण। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2528–2533।
11. दास, बिमल; सेनापति, जगन्नाथ; और दास, ओंकार। (2014). हम मौसम से क्या सीखते हैं? नया जलवायुदृअर्थव्यवस्था साहित्य। जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर, 52(3), 740–798।
12. दास, सुबोध; सेनापति, जगदीश; और सेनापति, अनिल। (2012). तापमान के अचर प्रभाव, पिछले आठ वर्षों से साक्ष्य। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 4(3), 66–95।
13. मोहन; और स्वामीनाथन, एम. एस. (2010). खाद्य उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव। विज्ञान और सतत खाद्य सुरक्षा, 107–132।
14. रामास्वामी, राघव; और शालिनी, वंदना। (2003). कृषि में जोखिम प्रबंधन। भारतीय सांख्यिकी संस्थान, नई दिल्ली, 45–47।

Cite this Article

"डॉ0 विकाश कुमार", "जलवायु परिवर्तन और भूजल स्तर में गिरावटः भारत के भूगोल पर दीर्घकालिक प्रभाव", ResearchNext International Multidisciplinary Journal (RPIMJ), ISSN: 3107-9725 (Online), Volume:1, Issue:2, October-December 2025.

Journal URL- https://www.researchnextjournal.com/

DOI- 10.64127/rnimj.2025v1i2001